इकाई 1 संज्ञा प्रकरण – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मङ्गलाचरणम्..... मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः सूत्र तक।

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- चौदह माहेश्वर सूत्रों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- चौदह माहेश्वर सूत्रों के अन्तर्गत **अच्** एवं **हल्** वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- 'हलन्त्यम्' सूत्र की व्याख्या एवं तदाश्रित 'उपदेश' पद का अर्थ जान सकेंगे।
- आद्योच्चारण का तात्पर्य-ज्ञान कर सकेंगे।
- 'अदर्शनं लोपः' सूत्र का विस्तृत ज्ञान कर सकेंगे।
- 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के माध्यम से प्रत्याहार निर्माण की प्रक्रिया का ज्ञान कर सकेंगे।
- स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि भेद-प्रभेदों को जान सकेंगे।
- अनुनासिक एवं निरनुनासिक (या अननुनासिक) वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

लौकिक या पारलौकक व्यवहार का मूल माध्यम संज्ञायें ही हैं। स्वयं आचार्य यास्क ने इनका महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है–**''संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके।''** अतः व्याकरणशास्त्र के प्रारम्भिक ग्रन्थ वरदराजाचार्य–कृत 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' में भी सर्वप्रथम संज्ञाप्रकरण की व्यवस्था की गयी है।

यहाँ पर स्पष्ट कर देना परम आवश्यक है कि आज हम जिस व्याकरणशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन कर रहे हैं, उसे माहेश्वर व्याकरण या पाणिनीय व्याकरण कहा जाता है। भगवान् शिव की अमोघ कृपा से आचार्य पाणिनि को 'अइउण्' आदि चौदह सूत्रों की प्राप्ति हुई और इन्हीं सूत्रों के आधार पर आचार्य पाणिनि ने लगभग 4000 सूत्रों के विस्तृत कलेवर से समृद्ध, आठ अध्यायों में निबद्ध, बत्तीस पादों से युक्त समलङ्कृत 'अष्टाध्यायी' नामक वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित शब्दशास्त्र (व्याकरण) का विद्वज्जनोपकार हेतु प्रणयन किया। आज सम्पूर्ण विश्व में इसी ग्रन्थ-रत्न को व्याकरण का आधार ग्रन्थ मानकर पठन-पाठन चल रहा है।

वैसे तो, आचार्य पाणिनि प्रमाणभूत आचार्य हैं। उनकी कृति में किसी प्रकार की न्यूनता सम्भव ही नहीं है। फिर भी महापुरुषों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने परवर्तियों पर अनुग्रह करके कुछ न कुछ कहने का अवसर प्रदान ही कर देते हैं। इसी क्रम में अष्टाध्यायी के कुछ सूत्रों की पूर्णता के लिए आचार्य कात्यायन ने पाणिनीय सूत्रों पर वार्तिकों की रचना की और तदनन्तर सूत्रों और वार्तिकों की विशद् व्याख्या के रूप में महाभाष्यकार शेषावतार आचार्य पतंजलि ने 84 आह्निकों के सुविस्तृत कलेवर वाले 'महाभाष्य' नामक अत्यन्त बृहद् ग्रन्थ की रचना की। उपर्युक्त तीनों आचार्यों (पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि) को वैयाकरण परम्परा के 'त्रिमुनि' के नाम से जाना जाता है। इनके ग्रन्थों को सूत्रानुसारी परम्परा में गिना जाता है। इनके अतिरिक्त काशी के विद्वान् वामन-जयादित्य द्वारा लिखित 'काशिका' को भी इसी परम्परा का ग्रन्थ माना जाता है। कुछ दिनों तक इसी क्रम से व्याकरण का पठन-पाठन चलता रहा किन्तु कालान्तर में शास्त्र के सरलीकरण की आवश्यकता अनुभव की गयी और प्रक्रिया ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ हुई। इस क्रम में आचार्य भट्टोजि दीक्षित का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने अष्टाध्यायी के सम्पूर्ण सूत्रों पर 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना करके लौकिक एवं वैदिक समाज का बहुत बड़ा उपकार किया। इन्हीं के शिष्य वरदराजाचार्य ने 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' एवं 'मध्यसिद्धान्तकौमुदी' की रचना की। प्रक्रियानुसार परम्परा के इन्हीं तीन ग्रन्थों को नव्य-व्याकरण का आधार माना जाता है।

अब हम पुनः संज्ञा प्रकरण पर आते हैं। व्याकरण में संज्ञा, संज्ञक एवं संज्ञी का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया जाएगा। नाम को संज्ञा एवं नाम वाले को संज्ञक या संज्ञी कहते हैं, जैसे – किसी का नमा 'बैकुण्ठ' है तो 'बैकुण्ठ' यह शब्द संज्ञा है और जिस व्यक्ति का नाम 'बैकुण्ठ' है, वह संज्ञी या संज्ञक है। स्पष्ट है कि इस इकाई में विभिन्न सूत्रों के द्वारा अनेक व्याकरणोपयोगी संज्ञाओं का ज्ञान प्राप्त किया जायेगा, जिनका उपयोग शास्त्र के अनेक (सन्धि, समास, कारक, विभक्ति, कृदन्त, तद्धित आदि) प्रकरणों में यथास्थान किया जायेगा। अच्, हल्, इत्, लोप, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, संयोग, संहिता, पद आदि ऐसी ही संज्ञायें हैं, जिनका सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र में पदे-पदे उपयोग होता है। शेष ज्ञान इकाई के विस्तृत अध्ययन से स्वतः होगा।

1.2 मङ्गलाचरणम् ..... मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः सूत्र तक।

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आप लघुसिद्धान्तकौमुदी ग्रन्थ के मंगलाचरण और संज्ञा प्रकरण के सूत्रों का अध्ययन करेंगे।

मङ्गलाचरणम्

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्।।

अन्वय – अहम् (वरदराजः) शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि।

अर्थ – मैं (वरदराज) शुद्ध एवं प्रशस्त गुणों से युक्त सरस्वती देवी को नमस्कार कर पाणिनीय अष्टाध्यायी (नामक विस्तृत शास्त्र) में (सुकुमार मति बालकों के) प्रवेश के लिए (इस) लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना करता हूँ।

नोट : यहाँ पर आचार्य वरदराज ने गौण क्रिया 'नत्वा' के द्वारा ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को नमस्कार करके '**नमस्कारात्मक**' मङ्गलाचरण की सूचना दी। दूसरी ओर 'करोमि' इस मुख्य क्रिया के द्वारा 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' रूप विषय-वस्तु का उल्लेख कर '**वस्तुनिर्देशात्मक**' मङ्गलाचरण को भी बताया। यह लघुसिद्धान्तकौमुदी ही व्याकरण का प्रवेश द्वार है।

अब मङ्गलाचरण के पश्चात् यहाँ से ग्रन्थ की औपचारिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

अथ संज्ञाप्रकरणम् –

अइउण्।।1।। ऋलृक् ।।2।। एओङ्।।3।। ऐऔच् ।।4।। हयवरट् ।।5।। लण्।।6।। ञमङणनम्।।7।। झभञ्।।8।। घढधष्।।9।। जबगडदश्।।10।। खफछठथचटतव्। ।।11।। कपय् ।।12।। शषसर्।।13।। हल्।।14।।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि।

अर्थ – ये चौदह सूत्र माहेश्वर अर्थात् भगवान् महादेव से प्राप्त हैं। इनका प्रयोजन 'अण्' आदि संज्ञा करना है। इन (चौदह सूत्रों) के अन्त्य (ण्, क्, ङ् आदि) वर्ण इत् संज्ञक हैं। (हयवरट् आदि सूत्रों के) टकारादिओं के साथ पठित अकार उच्चारण के लिए है परन्तु 'लण्' सूत्र के मध्य में पठित अकार इत् संज्ञक है।

व्याख्या – यह प्रसिद्धि है कि आचार्य पाणिनि अपनी विद्यार्थी अवस्था में बहुत मन्द बुद्धि थे। इनके गुरू आचार्य **वर्ष** के छोटे भाई **उपवर्ष**, जिन्होंने बोधायन वृत्ति लिखी, ने पाणिनि को भगवान् शिव की उपासना हेतु प्रेरित किया। अनन्तर भगवान् शिव ने इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ताण्डव नृत्य के पश्चात् 14 बार डमरू बजाया। इससे 14 सूत्र सुस्पष्ट रूप से पाणिनि को प्राप्त हुए। भगवान् शंकर से प्राप्त इन सूत्रों को माहेश्वर सूत्र कहा जाता है। **''महेश्वरात् आगतानि प्राप्तानि सूत्राणि माहेश्वर सूत्राणि।''** 'तत आगतः' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर माहेश्वर पद बनता है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये सूत्र आचार्य पाणिनि द्वारा कृत हैं। कुछ भी हो, ये सूत्र पाणिनीय व्याकरण के प्राण हैं, आधार हैं। इनका उपयोग आगे 'अण्', 'अच्' आदि संज्ञाओं (प्रत्याहारों) के निर्माण में किया जायेगा। प्रत्याहारों में 'अण्' सबसे पहले या आदि में है; इसीलिए इसे **अणादि** कहा जाता है, यथा– ''अण् आदिर्येषां ता अणादयः, अणादयश्चताः संज्ञाः अणादिसंज्ञाः। अणादिसंज्ञा अर्थः प्रयोजनं येषां तानि इमानि अणादि संज्ञार्थानि।''

नियम 1 –एषामन्त्या इतः।।

अर्थ – इन चौदह माहेश्वर सूत्रों के अन्त में स्थित व्यञ्जन वर्ण (ण्, क्, ङ्, च्, ट् आदि) इत् संज्ञक होते हैं।

व्याख्या – इन चौदह माहेश्वर सूत्रों को अष्टाध्यायी की आधारशिला माना जाता है। इन्हीं के आधार पर आचार्य पाणिनि ने लगभग 4000 सूत्रों की रचना की। इन चौदह सूत्रों के अन्त्य में विद्यमान ण्, क्, ङ्, च्, ट्, ण्, म्, ञ्, श्, व, य्, ट्, ल् इन वर्णों की इत् संज्ञा होती है। प्रस्तावना खण्ड में स्पष्ट किया जा चुका है कि इन इत् संज्ञकों के बल से ही 'अण्' आदि संज्ञाओं (प्रत्याहारों) का निर्माण किया जाता है। जो अन्त में हो

उसे 'अन्त्य' कहते हैं। 'अन्ते भवम् अन्त्यम्'। संज्ञा का अर्थ है – 'नाम''। इन चौदह अन्त्य वर्णों को 'इत्' कहा जाता है। 'इत्' नामक संज्ञा इनकी होगी अर्थात् ये 'इत्' नाम वाले कहलाते हैं। व्याकरण में संज्ञा, संज्ञक और संज्ञी का व्यवहार स्थान-स्थान पर किया गया है। नाम को संज्ञा और नाम वाले को संज्ञक या संज्ञी कहते हैं। जैसे किसी का नाम 'राम' है तो यह शब्द संज्ञा है और 'राम' नाम वाला शरीरधारी व्यक्ति संज्ञी है। इस प्रकार ण्, क्, ङ् आदि अन्त्य वर्ण इत्-संज्ञक हैं और 'इत्' यह इन वर्णों की संज्ञा है और भी सरल भाषा में कहें तो ण्, क्, ङ् आदि वर्ण-व्यक्ति हैं और इन वर्ण-व्यक्तियों का नाम हैं – 'इत्'। इन चौदह सूत्रों के अन्त्य वर्णों की इत् संज्ञा करने का फल 'अण्' आदि प्रत्याहारों की सिद्धि करना ही है, जो आगे सविस्तार बताया जायेगा।

नियम 2 – हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः।।

अर्थ – (हयवरट् सूत्र से प्रारम्भ) हकार (ह्) आदि में विद्यमान अकार (मात्र) उच्चारण के लिए है।

व्याख्या – 'हकारादिषु' सप्तमी विभक्ति बहुवचन, 'उच्चारणार्थः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। माहेश्वर सूत्रों में जितने वर्ण हैं, उनको दो वर्गों में विभाजित किया गया है। वे हैं – स्वर (अच्) एवं व्यंजन (हल्)। 'रट्+लण्'। यहाँ ट् एवं ण् की इत्संज्ञा होकर लोप होगा तो 'र+ल्' यह स्थिति बनेगी। अब 'र' में अ उच्चारणार्थ ही है तो निकल जायेगा। तब 'र्' यह स्थिति होगी। पुनः 'ल्' में भी 'अ' इत् संज्ञक है तो हम 'र्' से 'अ' तक के वर्णों को ग्रहण करेंगे। 'र' से अ को मिलाने पर 'र्' प्रत्याहार बनेगा – र् ल् अ = र्। अब 'र' प्रत्याहार में दो वर्ण होंगे – 'र्' और 'ल्'। इसका प्रयोजन 'उरण् रपरः' आदि सन्धि स्थलों में चरितार्थ होता है।

नियम 3 – लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

अर्थ – लण् (छठें सूत्र) के मध्य में स्थित अकार का है।

व्याख्या – 'लण्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'मध्ये' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'इत्सञ्ज्ञकः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। ऊपर बताया गया है कि चौदह माहेश्वर सूत्रों में हकार आदि में लगे हुए अकार केवल उच्चरण के लिए हैं क्योंकि बिना स्वर की सहायता से ह् य् व् र् आदि शुद्ध व्यंजनों का उच्चारण सम्भव नहीं है। अब यहाँ एक नयी बात सामने आ रही है 'लण्' सूत्र में विद्यमान 'अ' (ल्+अ+ण्) के उच्चारण के लिए तो है ही साथ-साथ एक प्रयोजन और भी है कि यह इत् संज्ञक भी है। अर्थात् जैसे – चौदह माहेश्वर सूत्रों के अन्त्य वर्णों (ण् क् आदि) की इत् संज्ञा होती है, वैसे ही 'लण' सूत्र में विद्यमान अकार भी इत् संज्ञक है। स्पष्ट है कि ल् के साथ जुड़े हुए 'अ' के दो रूप हैं। यह उच्चारणार्थक होने के साथ-साथ इत्-संज्ञक भी है। इसकी इत् संज्ञा करने का प्रयोजन 'र्' प्रत्याहार की सिद्धि करना है। जैसे – हम 'र्' प्रत्याहार की सिद्धि करना चाहते हैं तो हमें 'हयवरट्' के सूत्र के र् से लेकर लण् सूत्र के 'अ' तक के वर्णों को ग्रहण करना होगा।

सूत्र – हलन्त्यम् 1।3।3।।

वृत्ति – उपदेशेऽन्त्यं हल् इत् स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

अर्थ – उपदेश में वर्तमान अन्त्य हल् (व्यंजन) इत् संज्ञक हो। आद्यो (शिव, पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि) का उच्चारण या कथन ही उपदेश है अथवा धातु आदि के आद्योच्चारण को उपदेश कहते हैं। सूत्रों में (जिन पदों की आवश्यकता हो किन्तु उपस्थित न हों) जो पद न हों (किन्तु वृत्ति में दिखाई दें) उन्हें पिछले या कहीं-कहीं अगले) सूत्र से ग्रहण कर लेना चाहिए।

व्याख्या – 'उपदेशे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'अन्त्यम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'हल्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'इत्' प्रथमा विभक्ति एकवचन। इस व्याकरणशास्त्र के प्रथम कर्ता आचार्य पाणिनि हैं। इन्होंने 'अष्टाध्यायी' नामक जगत् प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में (8X4 = 32) बत्तीस पाद हैं। प्रत्येक पाद में सूत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न है। इसे निम्न तालिका से समझा जा सकता है, यथा–

अध्यायनाम	प्रथम पाद	द्वितीय पाद	तृतीय पाद	चतुर्थ पाद	सम्पूर्ण संख्या
प्रथमाध्याय	74	73	93	109	349
द्वितीयाध्याय	71	38	73	85	267
तृतीयाध्याय	150	188	176	117	631
चतुर्थाध्याय	176	144	166	144	630
पंचमाध्याय	135	140	119	160	554
षष्ठाध्याय	217	198	138	175	728
सप्तमाध्याय	103	118	119	97	437
अष्टमाध्याय	74	108	119	68	369
सम्पूर्ण अष्टाध्यायी की सूत्र संख्या					3965

इस 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' में भी अष्टाध्यायी के ही सूत्र बिखरे पड़े हैं। इन सूत्रों के आगे तीन अंक लिखे गये हैं। पहला अंक अष्टाध्यायी के अध्याय का सूचक, दूसरा पाद का सूचक एवं तीसरा सूत्र सूचक है, यथा– 'हलन्त्यम् ।1।3।3।।' का तात्पर्य है कि यह सूत्र अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद का तीसरा सूत्र है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए। अब सूत्रों के अर्थ करने की पद्धति पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

1) सर्वप्रथम सूत्रों का पदच्छेद करना चाहिए। जैसे– 'हलन्त्यम्– ।1।3।3।।' सूत्र में हल्, अन्त्यम्। 'आदिरन्त्येन सहेता ।1।1।70।।' सूत्र में आदिः, अन्त्येन, सह, इता आदि। सूत्रों की वृत्ति करते समय कहीं-कहीं पिछले सूत्रों से एवं कहीं-कहीं आगे के सूत्रों से भी पद ग्रहण कर लिए जाते हैं, जैसे– 'हलन्त्यम् ।1।3।3।।' सूत्र में पिछले सूत्र 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।1।1।2।।' से 'उपदेश' और 'इत्' पद का ग्रहण किया गया है। वृत्ति में आये हुए सभी पदों की विभक्ति एवं वचन पदच्छेद द्वारा स्पष्ट करना चाहिए।

2) पदच्छेद के बाद उन पदों की विभक्तियाँ जाननी चाहिये, जैसे 'हलन्त्यम्' सूत्र की वृत्ति में 'उपदेशे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, अन्त्यम् प्रथमा विभक्ति एकवचन, हल् प्रथमा विभक्ति एकवचन, इत् प्रथमा विभक्ति एकवचन, आदि।

3) पदच्छेद और विभक्ति जानने के पश्चात् समास जानना चाहिए। यह समास कहीं होता है और कहीं नहीं भी होता है, यथा– 'तस्य लोपः' यह व्यस्त सूत्र है। यहाँ समास नहीं है। 'तुल्यास्यप्रयत्नं स्वर्णम्' आदि सूत्रों में समास है। ये सब यथास्थान स्पष्ट किये जायेंगे।

इन उपर्युक्त विवरणों या निर्देशों के पश्चात् सूत्रार्थ पर आते हैं। पीछे 'एषामन्त्या इतः' कहकर 'ण्', 'क्' आदियों को 'इत्' कहा गया है। अब सूत्रों के माध्यम से इनकी सिद्धि करते हैं। 'उपदेशे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, (उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से), 'अन्त्यम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'हल्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'इत्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, (उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से)।

अर्थ – उपदेशे = उपदेश में विद्यमान, अन्त्यम् = अन्तिम, हल् = व्यंजन, इत् = इत् संज्ञक, स्यात् = हो। अर्थात् यदि उपदेश में कहीं भी अन्त्य हल् मिलेगा तो, वह 'इत्' संज्ञक हो। अब प्रश्न यह है कि उपदेश क्या है? काशिकाकार ने उपदेश के अन्तर्गत सूत्रपाठ एवं खिलपाठ (धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ और लिङ्गानुशासन) का ही समावेश किया है। कुछ विद्वान् सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ, उणादि, लिङ्गानुशासन, वार्तिकपाठ, आगम, प्रत्यय और आदेश इन सभी को उपदेश मानते हैं। कहा भी है–

''धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगमप्रत्ययादेश उपदेशाः प्रकीर्तिताः।।''

भाष्यकार पतंजलि ने सब स्थल नियत कर दिये हैं। उनका कथन है कि प्रत्याहार सूत्र, धातुपाठ, गणपाठ, प्रत्यय, आगम और आदेश ये सब उपदेश हैं। इनमें अन्त्य हल् इत्संज्ञक होता है। यथा–

''प्रत्ययाः शिवसूत्राणि, आदेशा आगमास्तथा।
धातुपाठो गणो पाठः, उपदेशाः प्रकीर्तिताः।।''

नोट – यहाँ ''उपदेश आद्योच्चारणम्'' कहा गया। आद्योच्चारण ही उपदेश है। किसका? त्रिमुनियों का। पुनः शंका उठती है कि शास्त्र के निर्माण से पूर्व जो कुछ उन्होंने कहा, रोया, गाया वह भी शास्त्र है? तो, इसका समाधान है कि – ''आद्यत्वं नाम अज्ञाततत्त्वज्ञापकत्वम्'' अर्थात् शब्दशास्त्र में शब्दों का जो स्वरूप अज्ञात है, उसे सूत्र के माध्यम से ज्ञात करना ही आद्यत्व है।

संक्षेप में उपदेशों का उल्लेख कर देना समीचीन ही होगा।

i) **माहेश्वर सूत्र** –प्रथम शिवसूत्र 'अइउण्' के अन्त में विद्यमान हल् णकार है। अतः 'हलन्त्यम्' सूत्र से उसकी 'इत्' संज्ञा हुई है।

ii) **धातुपाठ** –'डुपचष् पाके' यह धातुपाठ मे पठित है। इसके अन्त्य हल् षकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा हुई।

iii) **गणपाठ** –गणपाठ में आने वाले 'देवट्', 'नदट्' आदि शब्दों के अन्त्य टकार भी 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञक हैं।

iv) **प्रत्यय** –'अजाद्यतष्टाप्' आदि सूत्रों से विहित 'टाप्' प्रत्यय के अन्त्य पकार 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञक हुए।

v) **आगम** –'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से प्राप्त तुक् आगम का अन्त्य ककार भी 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञक हुआ।

vi) **आदेश** –'अवङ् स्फोटायनस्य' आदि सूत्रों से प्राप्त 'अवङ्' आदि आदेश के अन्त्य ङ्कार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा हुई।

विशेष –यहाँ पर शंका उपस्थित होती है कि सूत्र में व्याख्या के लिए 'उपदेश' पद की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका समाधान यही है कि यदि 'उपदेश' पद का विधान न किया जाता तो, लौकिक प्रयोगों में प्रचलित 'अग्निचित्त', 'सोमसुत्' आदि शब्दों के अन्त्य हल् की भी इत् संज्ञा होती और **'तस्य लोपः'** से उनका लोप प्राप्त होता। इसे रोकने के लिए ही ऐसा विधान किया गया।

सूत्र – अदर्शनं लोपः ।1।1।60।।

वृत्ति – प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

अर्थ – विद्यमान का अदर्शन (न सुनाई देना) लोप संज्ञक होता है।

व्याख्या – यहाँ पर 'स्थानेऽन्तरतमः' से 'स्थाने' पद की अनुवृत्ति आती है और विभक्ति विपरिणाम से षष्ठ्यन्त होकर 'स्थानस्य' हो जाता है। 'स्थानस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'अदर्शनं' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'लोपः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। अब अर्थ हुआ (स्थानस्य) विद्यमान का (अदर्शनं) न सुनाई देना (लोपः) लोप कहलाता है। यहाँ अदर्शन संज्ञी तथा लोप संज्ञा है।

'दृश्' धातु यहाँ ज्ञानार्थक है। ज्ञान आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों से होता है किन्तु यह व्याकरणशास्त्र (शब्दानुशासन) का विषय है। अतः कानविषयक ज्ञान ही यहाँ ग्राह्य है क्योंकि शब्द श्रवणेन्द्रिय के विषय हैं न कि चक्षुरिन्द्रिय के। सिद्धान्तकौमुदी की तत्त्वबोधिनी व्याख्या में कहा गया है – ''अत्र दृशिर्ज्ञानसामान्यवचनः, दर्शनं ज्ञानम्, तदिह शब्दानुशासनप्रस्तावाच्छब्दविषयकं सत् श्रवणं सम्पद्यते।'' तो, विद्यमान का न सुनाई देना ही लोप होता है, जैसे कोई व्यक्ति सखान्, पद का उच्चारण करता है, किन्तु सुनने वाला नकार को नहीं सुनेगा। फलतः व्यवहार में केवल 'सखा' का प्रयोग होगा, न कि –सखान्' का।

नोट – ध्यान देने की बात है कि व्याकरणशास्त्र में शब्द को नित्य माना गया है। अतः 'लोप' का विनाश (विनष्ट होना) अर्थ लेने पर अनित्यता दोष आ रहा था। उसीको दूर करने के लिए 'प्राप्त या विद्यमान के न सुने जाने' को लोप कहा गया है। तो, लोप का यह अर्थ करने से शब्द की नित्यता बनी रहती है।

सूत्र – तस्य लोपः ।1।3।9।।

वृत्ति – तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

अर्थ – उस इत् संज्ञक का लोप होता है। ण् आदि अण् आदियों के लिए हैं।

व्याख्या – 'तस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'इतः' षष्ठी विभक्ति एकवचन ('उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से प्रथमान्त इत् पद आकर विभक्ति विपरिणाम से षष्ठ्यन्त (इतः) हो जाता है), 'लोपः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। अर्थ हुआ – (तस्य) उस (इतः) इत् संज्ञक का (लोपः) लोप होता है। यहाँ पर 'तस्य' का अभिप्राय यह है कि – 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' 1.3.2 सूत्र से लेकर ('लशक्वतद्धिते' सूत्र तक की गई इत् संज्ञा से है। भावार्थ यह है कि जिसकी भी इत् संज्ञा हुई है, उसका 'तस्य लोपः' से लोप हो जायेगा। अब वह इत् संज्ञा चाहे 'हलन्त्यम्' सूत्र से की गयी हो या किसी अन्य सूत्र से। अतः 'तस्य' पद का प्रयोग होने से यह लोप सम्पूर्ण इत् संज्ञक का होता है, केवल अन्तिम इत् संज्ञक वर्ण का ही नहीं। उदारणार्थ – 'आदिर्ञिटुडवः' सूत्र से 'टुनदि' धातु के आदि 'टु' की इत् संज्ञा है और 'तस्य लोपः' से 'टु' का लोप होकर एवं नदि के दकारोत्तरवर्ती अनुनासिक अच् (इँकार) का 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत् संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप होकर केवल 'नद्' ही बचता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन वर्णों की इत् संज्ञा हुई है, वे चाहे आदि, अन्त्य या मध्य कहीं भी हों, उनका लोप 'तस्य लोपः' से हो जाता है।

अब इस सूत्र से चौदह माहेश्वर सूत्रों के अन्त्य वर्णों ण्, क्, ङ्, च्, ट् आदि इतों का भी लोप प्राप्त होता है किन्तु इनका लोप नहीं करना है, क्योंकि इनसे अण् आदि प्रत्याहार बनाये जायेंगे। यदि इनका लोप करना होता तो, इनका ग्रहण ही क्यों करते? अतः इनका लोप नहीं करना चाहिए। अब ण्, क् आदि इत् संज्ञकों से प्रत्याहार बनाने के लिए अग्रिम सूत्र लिखते हैं–

संज्ञा सूत्र – आदिरन्त्येन सहेता ।1।1।70।।

वृत्ति – अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथा– अण् इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवमच् हल् अल् इत्यादयः।

अर्थ – अन्त्य इत् (संज्ञक वर्ण) से युक्त आदि वर्ण, मध्यगत वर्णों की तथा अपनी संज्ञा हो, जैसे– अण् यह अ इ उ वर्णों की संज्ञा है। इसी प्रकार अक्, अच्, हल्, अल्, आदि भी जान लेने चाहिए।

व्याख्या – 'आदिः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अन्त्येन' तृतीया विभक्ति एकवचन, सह इत्यव्ययपदम्। 'इता' तृतीया विभक्ति एकवचन, 'स्वस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, (स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा सूत्र से 'स्वम्' यह प्रथमान्त पद आकर विभक्ति-विपरिणाम से षष्ठ्यन्ते हो जाता है)। यह सूत्र संज्ञाधिकार में पढ़े जाने से संज्ञासूत्र है। यहाँ **'अन्त्येनेता सह आदिः'** अर्थात् **'अन्त्य इत् संज्ञक वर्ण के साथ आदि'** यह संज्ञा है। तो, अब संज्ञी का निर्णय करना है कि संज्ञी कौन है? 'आदि' और अन्त्य अवयव हैं। अवयवों से ही अवयवी का ज्ञान होता है। अतः वहाँ अवयवी ही संज्ञी होगा। उस अवयवी (समुदाय) से **आदि** और **अन्त्य** संज्ञा होने के कारण निकल जायेंगे। शेष बचे मध्यगत वर्ण ही संज्ञी होंगे। 'स्वस्य' पद की अनुवृत्ति से 'आदि' पद भी संज्ञी हो जायेगा। इस प्रकार आदि और मध्यगत वर्ण भी संज्ञी होंगे। तो, अब सूत्रार्थ हुआ – ''(अन्त्येन) अन्त्य (इता) इत् से (सह) युक्त (आदिः) आदि वर्ण (स्वस्य) अपनी तथा मध्यगत (मध्य में स्थित) वर्णों की संज्ञा होता है, उदाहरणार्थ – 'अइउण्' सूत्र में अन्त्य वर्ण 'ण्' है और आदि वर्ण 'अ'। अतः अन्त्य इत् (ण्) से युक्त आदि 'अण्' हुआ। यह

संज्ञा है। मध्य में स्थित 'इ उ' तथा आदि में स्थित 'अ' में तीनों संज्ञी हैं। इसी प्रकार अच्, अक्, हल्, आम् आदि भी जानने चाहिए। इन अण्, अक्, अच् आदि संज्ञाओं को पूर्वाचार्य 'प्रत्याहार' कहते चले आ रहे हैं। 'प्रत्याहियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा अनेनेति प्रत्याहारः' है। जहाँ वर्णों का संक्षेप हो, वहीं प्रत्याहार है, जैसे – अ इ उ ण् = अण्; अइउण् ऋलृक् = अक्, अ इ उ ण्, ऋ, लृ, क्; एओङ् ऐऔच् = एच् आदि।

ध्यान देने की बात है कि अन्त्य वर्ण सीमा निर्धारण के लिए हैं। व्यवहार में उनकी गणना नहीं होती है। पुनः हम सूत्र के बीच से भी वर्णों का ग्रहण करके प्रत्याहार बना सकते हैं, जैसे – अ इ उ ण्, ऋलृक में हम 'इ' से लेकर ऋलृक के क् तक इक् प्रत्याहार बनाते हैं। बस ध्यान रहे कि बाद में कोई इत् संज्ञक वर्ण अवश्य हो।

'अ इ इ ण्' आदि चौदह सूत्रों से यद्यपि अनेक प्रत्याहार बन सकते हैं तथापि पाणिनीय व्याकरण में जिनका व्यवहार किया जाता है, उनकी संख्या चौवालीस (44) है। कई लोग 'र' प्रत्याहार को नहीं मानते तो, उनके मत में तैंतालीस (43) हैं। इनमें से बयालीस (42) प्रत्याहार तो आचार्य पाणिनि ने स्वयं सूत्रों में व्यवहृत किये हैं। शेष दो में से एक 'ञम्' उणादि सूत्रों का एवं दूसरा 'चय्' वार्तिकपाठ का है। प्रत्याहारों के अन्तर्गत इत् संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं किया जाता है –**''प्रत्याहारेषु इतां ग्रहणं न।''** इस प्रकार चौदह माहेश्वर सूत्रों की सहायता से किसी भी सूत्र से कोई वर्ण ग्रहण करके आगे के इत् संज्ञक वर्ण के साथ मिलाकर प्रत्याहार बना सकते हैं। अब प्रत्याहारगत वर्णों का ज्ञान करने के लिए निम्नलिखित बातों को कण्ठस्थ कर लें–

क) वर्गों के पांचवें वर्ण ञमङणनम् सूत्र में हैं।

ख) वर्गों के चौथे वर्ण झभञ्, घढधष् सूत्र में हैं।

ग) वर्गों के तृतीय वर्ण जबगडदश् सूत्र में हैं।

घ) वर्गों के द्वितीय वर्ण खफछठथ तक हैं।

ङ) वर्गों के प्रथम वर्ण चटतप्, कपय् सूत्रों में हैं।

च) ऊष्म वर्ण शषसर्, हल् सूत्रों में हैं।

छ) अन्तःस्थ वर्ण यवरट्, लण् सूत्रों में हैं।

ज) स्वर वर्ण अइउण् ऋलृक् एओङ् ऐऔच् सूत्रों में हैं।

अब शास्त्रोपयोगी समस्त प्रत्याहारों एवं उनकी सूत्रगत उपयोगिता का विवरण निम्नवत् है–

प्रत्याहार	संज्ञी वर्ण	उदाहरण, सूत्र संख्या
1. अण्	अ, इ, उ	उरण् रपरः (29)
2. अक्	अ, इ, उ, ऋ, लृ	अकः सवर्णे दीर्घः (42)
3. इक्	इ, उ, ऋ, लृ	इको यणचि (15)
4. उक्	उ, ऋ, ल्	उगितश्च (1250)
5. एङ्	ए, ओ	एङः पदान्तादति (43)
6. अच्	सम्पूर्ण स्वर	इको यणचि (15)

7. इच्	'अ' को छोड़कर सभी स्वर	नाद् इचि (127)
8. एच्	ए, ओ, ऐ, औ	एचोऽयवायावः (22)
9. ऐच्	ऐ, औ	वृद्धिराद् ऐच् (32)
10. अट्	सभी स्वर, ट्, य्, व्, र्	अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (130)
11. अण्	सभी स्वर, ट्, अन्तःस्थ वर्ण	अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः (11)
12. इण्	'अ' को छोड़कर सब स्वर, ह्, अन्तःस्थ	इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात (514)
13. यण्	अन्तःस्थ वर्ण	इको यणचि (15)
14. अम्	स्वर, ह्, अन्तःस्थ, वर्ग–पञ्चम	पुमः खयि अम्परे (94)
15. यम्	अन्तःस्थ, वर्ग–पञ्चम	हलो यमां यमि लोपः (1000)
16. ञम्	वर्ग–पञ्चम	ञमन्ताड्डः (उणादि 112)
17. ङय्	ङ्, ण्, न्	ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (89)
18. यम्	अन्तःस्थ; वर्ग–पञ्चम, झ्, भ्,	अतो दीर्घो यञि (390)
19. झष्	वर्ग–चतुर्थ	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (253)
20. भष्	'भ्' को छोड़कर वर्ग–चतुर्थ	एकचो वशो भष् झष. (253)
21. अश्	स्वर; ह्; अन्तःस्थ; वर्गों के पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय वर्ण	भोभगोअघो अपूर्वस्य योऽशि (108)
22. हश्	ह्; अन्तःस्थ; वर्गों के पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय	हशि च (107)
23. वश्	व्, र्, ल्; वर्गों के पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय	नेड्वशि कृति (800)
24. जश्	वर्ग–तृतीय	झलां जशोऽन्ते (67)
25. झश्	वर्गों के चतुर्थ एवं तृतीय वर्ण	झलां जश् झशि (19)
26. बश्	ब्, ग्, ड्, द्	एकाचो बशो भष्. (253)
27. छव्	छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्	नश्छवि + अप्रशान् (95)
28. यय्	अन्तःस्थ; सब वर्ग	अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (97)
29. मय्	अ को छोड़कर सब वर्ग	मञ् उञो वो वा (58)
30. झय्	वर्गों के 4, 3, 2, 1 वर्ण	झयो होऽन्यतरस्याम् (75)
31. खय्	वर्गों के प्रथम एवं द्वितीय वर्ण	पुनः खयि + अम्परे (94)
32. चय्	वर्गों के प्रथम वर्ण	चयो द्वितीयाः शरि पौ. (वा. 14)
33. यर्	अन्तःस्थ; सभी वर्ग; श्, ष्, स्	यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (68)
34. झर्	वर्गों के 4, 3, 2, 1; श्, ष्, स्	झरो झरि सवर्णे (73)
35. खर्	वर्गों के 1, 2; श्, ष्, स्	खरि च (74)

36. चर्	वर्गों के 1; श्, ष्, स्	अभ्यासे चर् च (399)
37. शर्	श्, ष्, स्	ङणोः कुक्टुक् शरि (86)
38. अल्	सभी स्वर; सभी व्यंजन	अलोऽन्त्यस्य (21)
39. हल्	सभी व्यंजन	हलोऽनन्तराः संयोगः (13)
40. वल्	य् को छोड़कर सब व्यंजन	लोपो व्योर्वलि (429)
41. रल्	य्, व् को छोड़कर सब व्यंजन	रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (887)
42. झल्	वर्गों के 4, 3, 2, 1; ऊष्म वर्ण	झलो झलि (478)
43. शल्	ऊष्म वर्ण	शल इगुपधादनिटः क्सः (590)
44. र	र्, ल् वर्ण	उरण् रपरः (29)

संज्ञा सूत्र – ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ।1 ।2 ।27 ।।

वृत्ति –उश्च ऊश्च ऊ3श्च इति वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा।

अर्थ – एकमात्रिक, द्विमात्रिक तथा त्रिमात्रिक उकार के उच्चारणकाल के सदृश जिस अच् (स्वर) का उच्चारणकाल हो, वह अच् क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञा वाला होता है। उपर्युक्त तीनों अचों के पुनः उदात्त आदि तीन-तीन भेद होते हैं।

व्याख्या – 'ऊकालः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अच्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'ह्रस्व दीर्घप्लुतः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। यह संज्ञा सूत्र है। यहाँ से व्याकरणशास्त्र में उपकारक आगे कही जाने वाली सवर्ण संज्ञा और सवर्ण-ग्राहक के उपयोगी अच् के अठारह भेद सिद्ध किये गये हैं। 'ऊकालः' का अर्थ है – उ, ऊ और ऊ3 काल वाले। 'उश्च ऊश्च ऊ3श्च इति वः। वः कालो यस्य सः ऊकालः।'' अच् प्रत्याहार है और उसमें सभी स्वर आ जाते हैं। 'ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्चेति ह्रस्वदीर्घप्लुतः। इतरेतरद्वन्द्वः। (यहाँ इतरेतर द्वन्द्व होने से यद्यपि बहुवचन होना चाहिए था तथापि सौत्र होने से एकवचन हुआ)। अब सूत्रार्थ हुआ – ''(ऊकालः) एकमात्रिक उकार के सदृश उच्चारण काल वाला, द्विमात्रिक उकार के सदृश उच्चारण काल वाला तथा त्रिमात्रिक उकार के सदृश उच्चारण काल वाला अच्, क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञा वाला होता है। अर्थात् यदि एकमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान किसी अच् का उच्चारण काल होगा तो, वह अच् ह्रस्व, द्विमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान किसी की उच्चारण काल होगा तो, वह अच् दीर्घ एवं त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल होगा तो, वह अच् प्लुत संज्ञक होगा। कहा भी गया है–

''एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयः व्यंजनं चार्धमात्रिकम्।।''

आधुनिक काल में लोग सैकेण्ड से मात्रा का निर्धारण करते हैं। एक सैकेण्ड की सीमा में उच्चारित उकार ह्रस्व, दो सैकेण्ड की सीमा में उच्चारित उकार दीर्घ एवं तीन सैकेण्ड की सीमा में उच्चारित उकार प्लुत होता है। इस प्रकार अचों के ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत, ये तीन-तीन भेद हो जाते हैं। ध्यातव्य है कि सभी अचों के तीन-तीन भेद

नहीं होते। पर हाँ! यह तीनों भेद अचों के ही होते हैं; अन्य वर्णों के नहीं। अब अग्रिम तीन सूत्रों के द्वारा प्रत्येक के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीन-तीन भेद बताये जा रहे हैं।

संज्ञा सूत्र – उच्चैरुदात्तः ।1।2।19।।

वृत्ति – ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसञ्ज्ञः स्यात्।

अर्थ – भागों वाले तालु आदि स्थानों में जो अच् (स्वर) उपर वाले (ऊर्ध्व) भाग में बोला जाये वह उदात्त होता है।

व्याख्या – उच्चैः इति अव्यय पदम्। 'उदात्तः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अच्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, (ऊकालोऽजझस्व दीर्घप्लुतः सूत्र से)। 'उच्चैः' पद का अर्थ स्थानकृत ऊँचाई से है न कि आवाज की ऊँचाई (तेजी) से। अब अर्थ हुआ– ''अपने स्थान के ऊपर वाले भाग में उच्चार्यमाण अच् (उदात्तः) उदात्तसंज्ञक होता है।'' अर्थात् जिस स्वर का उच्चारण अपने निर्धारित स्थान के ऊपर भाग से होगा, वह अच् उदात्त कहलायेगा। जैसे– 'अ' का उच्चारणस्थान कण्ठ है। यदि वह कण्ठ के ऊर्ध्व भाग से उच्चारित होगा तो, उदात्त कहलायेगा।

ऐसा ही अन्य अचों के विषय में भी समझना चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि ''जो ऊँचे स्वर में बोला जाये, वह उदात्त होता है'' ऐसा अनर्थ किया करते हैं। उनके अनर्गल प्रलाप से सावधान रहना चाहिए क्योंकि ऐसा मानने पर मानसिक जप में उदात्तत्व आदि न माना जा सकेगा।

संज्ञा सूत्र – नीचैरनुदात्तः ।1।2।30।।

वृत्ति – ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – भागों वाले तालु आदि स्थानों में जो अच् (स्वर) निचले भाग में बोला जाये, वह अनुदात्त होता है।

व्याख्या – नीचैः इत्यव्ययपदम्; 'अनुदात्तः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अच्' प्रथमा विभक्ति एकवचन। (ऊकालोऽजझस्व दीर्घप्लुतः सूत्र से)। अब अर्थ हुआ– अपने (निर्धारित उच्चारण) स्थान के नीचे वाले भाग से उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त होता है, जैसे – अकार कण्ठ के ऊर्ध्व भाग से बोला जाये तो, उदात्त और यदि कण्ठ के अधो भाग (नीचे) से बोला जाये तो, अनुदात्त होगा। ऐसे ही अन्य वर्णों (स्वर वर्णों) के विषय में समझना चाहिए।

संज्ञा सूत्र – समाहारः स्वरितः ।1।2।31।।

वृत्ति –उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाहियते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा।

अर्थ – उदात्त और अनुदात्त वर्णों के धर्म, (जो उदात्तत्व और अनुदात्तत्व) ये दोनों जिस अच् में विद्यमान हों, वह अच् (स्वर) स्वरित होता है। इस प्रकार नौ प्रकार का वह अच् पुनः अनुनासिक और अननुनासिक भेद से दो प्रकार का होता है।

व्याख्या – 'उदात्तस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'अनुदात्तस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन। 'उच्चैरुदात्तः' सूत्र से 'उदात्तः' तथा 'नीचैरनुदात्तः' से 'अनुदात्तः' पद की अनुवृत्ति आकर विभक्ति विपरिणाम से षष्ठ्यन्त होकर 'उदात्तस्य' एवं 'अनुदात्तस्य' हुआ। 'समाहारः' (समाहरणं समाहारः, भावे घञ्) प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'स्वरितः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। अब भावार्थ होता है – ''(उदात्तस्य), उदात्त (अनुदात्तस्य) और अनुदात्त के (समाहारः) एकीकरण या समुच्चय या मेल वाला वर्ण (स्वर वर्ण) (स्वरितः) स्वरित कहलाता है।'' अर्थात् जिस स्वर में उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णों के धर्मों का मेल होता है, वह स्वरित संज्ञक होता है। उदाहरणार्थ – अकार का उच्चारण कण्ठ के ऊर्ध्व एवं अधो दोनों भागों से होगा, तब वह अकार स्वरित होगा। इनका प्रयोग केवल वेद में ही होता है। इन्हें इस प्रकार से समझा जा सकता है– उदात्त – अ इ, अनुदात्त – अ इ, स्वरित – अ इ।

स्पष्ट है कि उदात्त के लिए कोई चिह्न नहीं होता, किन्तु अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा और स्वरित के ऊपर खड़ी रेखा का चिह्न होता है। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेद से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत नौ प्रकार के हो गये।

संज्ञा सूत्र – मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ।1।1।8।।

वृत्ति – मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिक संज्ञः स्यात्। तदित्थम् – अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादसभेदाः। लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।

अर्थ – मुखसहित नासिका से बोले जाने वाला वर्ण अनुनासिकसंज्ञक होता है। इस प्रकार – 'अ, इ, उ, ऋ' इन वर्णों में प्रत्येक के अठारह-अठारह भेद हो जाते हैं। 'लृ' वर्ण के दीर्घ न होने से 12 भेद होते हैं। एचो (ए, ओ, ऐ, औ) के भी ह्रस्व न होने से 12 भेद होते हैं।

व्याख्या – 'मुखनासिकावचनः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अनुनासिकः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। समासः मुखेन सहिता मुख सहिता (तृ.त.) मुखसहिता नासिका मुखनासिका (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्' वर्त्तिकेन)। उच्यतेइति वचनः (वर्ण इत्यर्थः), कर्मणि ल्युट्; मुखनासिकया वचनः मुखनासिका वचनः। अब सूत्रार्थ बना – ''(मुखनासिकावचनः) मुखसहित नासिका से बोले जाने वाला वर्ण (अनुनासिकः) अनुनासिकसंज्ञक होता है।''

कहने का तात्पर्य यह है कि मुख से तो प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता ही है किन्तु जो वर्ण मुख के साथ ही साथ नासिका से भी बोला जाये, वह (वर्ण) अनुनासिक होता है। जैसे – ङ् ण् न् म् ञ् आदि वर्ण। इसी प्रकार यदि अच् (स्वर) मुख और नासिका दोनों से बोला जाये, तो अननुनासिक होगा। (न अनुनासिकः अनुनासिकत्व धर्मरहितः स अननुनासिकः)। इस प्रकार पूर्व उल्लिखित नौ-नौ भेदों के पुनः अनुनासिक एवं अननुनासिक भेद से अठारह-अठारह भेद हो जाते हैं। अचों के विभेद में अब 'अ, इ, उ, ऋ' इनमें से प्रत्येक वर्ण के अठारह-अठारह भेद होते हैं। 'लृ' वर्ण के बारह भेद होते हैं। इसके दीर्घ न होने से छः भेद कम हो जाते हैं। एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के भी 12 ही भेद होते हैं। इसके ह्रस्व न होने से छः भेद कम हो जाते हैं। इनकी तालिका इस प्रकार है–

अ, इ, उ, ऋ, लृ	अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ
1. ह्रस्व उदात्त अनुनासिक 2. ह्रस्व उदात्त अननुनासिक 3. ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक 4. ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक 5. ह्रस्व स्वरित अनुनासिक 6. ह्रस्व स्वरित अननुनासिक	1. दीर्घ उदात्त अनुनासिक 2.दीर्घ उदात्त अननुनासिक 3.दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक 4.दीर्घअनुदात्त अननुनासिक 5.दीर्घ स्वरित अनुनासिक 6.दीर्घ स्वरित अननुनासिक	1. प्लुत उदात्त अनुनासिक 2.प्लुत उदात्त अननुनासिक 3.प्लुत अनुदात्त अनुनासिक 4.प्लुतअनुदात्त अननुनासिक 5.प्लुत स्वरित अनुनासिक 6.प्लुत स्वरित अननुनासिक

इस सम्पूर्ण प्रकरण का सार यह है कि सजातीय (एक ही उच्चारणस्थान वाले) अचों में परस्पर तीन प्रकार के भेद होते हैं – 1. कालकृत भेद, 2. स्थानकृत भेद और 3. नासिकाकृत भेद। 'ऊकालोऽजझस्वदीर्घप्लुतः' सूत्र कालकृत भेद करता है। 'उच्चैरुदात्तः, 'नीचैरनुदात्तः', 'समाहारः स्वरितः' ये सभी सूत्र स्थानभागकृत भेद करते हैं। 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' सूत्र नासिकाकृत भेद करता है।

बोध प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i) अच् के अन्तर्गत सभी .....आते हैं।

ii) टकार आदियों में अकार ..... होता है।

iii) माहेश्वर सूत्रों की संख्या ..... है।

iv) हल् प्रत्याहार में सभी ..... आते हैं।

v) लण् के मध्य स्थित ..... इत् संज्ञक होता है।

2. निम्नलिखित प्रष्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए –

i) जश् प्रत्याहार में आते हैं –

अ) वर्गों के प्रथम वर्ण ब) वर्गों के तृतीय वर्ण

स) वर्गों के पञ्चम वर्ण द) वर्गों के चतुर्थ वर्ण।

ii) 'एच्' के भेद हैं –

अ) 18 (ब) 12 (स) 16 (द) 11

iii) किस स्वर के अठारह भेद होते हैं –

अ) लृ (ब) ए (स) ऋ (द) ऐ

iv) त्रिमुनि में कौन नहीं है –

अ) पाणिनि (ब) वरदराज

स) कात्यायन (द) पतंजलि

v) अनुनासिक वर्ण बोले जाते हैं –

अ) नासिका से (ब) मुख से

स) मुख और नासिका से (द) किसी से नहीं

3. नीचे दिए गए प्रश्नों में से सत्य तथा असत्य कथन का चयन कीजिए –

i) माहेश्वर सूत्रों की संख्या पन्द्रह है – ( )

ii) 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र इत् संज्ञा करता है – ( )

iii) उदात्त स्वर अपने निर्धारित स्थान से ऊपर से बोले जाते हैं – ( )

iv) 'हल्' प्रत्याहार में समस्त व्यंजन आते हैं – ( )

v) 'ऌ' 12 प्रकार का बोधक है, क्योंकि उसका दीर्घ नहीं होता – ( )

अभ्यास प्रश्न

i) 'हलन्त्यम्' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

ii) प्रत्याहार किस कहते हैं?

iii) उपदेश किसे कहते हैं?

iv) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित में भेद बताइए।

1.3 सारांश

इस इकाई के विधिवत् अध्ययन से आप संज्ञाप्रकरण के अन्तर्गत मङ्गलाचरण के पश्चात् माहेश्वर सूत्र से लेकर 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' तक के सूत्रों को समझ चुके हैं। इसमें स्वरों एवं व्यंजनों के स्पष्ट भेद को समझाते हुए प्रत्याहार निर्माण की प्रक्रिया पर दृष्टिपात किया गया है। साथ ही इत् संज्ञा, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित संज्ञा, अनुनासिक संज्ञा पर भी विचार किया गया है। सभी स्वरों के भेदों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

1.4 शब्दावली

अच् –'अचः स्वराः' के द्वारा निर्देश किया गया है कि अच् का अर्थ है – स्वर।

हल् – व्यंजनों को हल् कहा गया है।

लोप – व्याकरणशास्त्र में जो वर्ण नहीं सुनाई देते (उपस्थित होने पर भी) उनकी लोप संज्ञा होती है या जिन वर्णों की इत् संज्ञा होती है, उनका 'तस्य लोपः विधिसूत्र से लोप होता है।

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित – जो वर्ण अपने नियत स्थान से ऊपर से बोले जाते हैं, वे उदात्त जो नीचे से बोले जाते हैं, वे अनुदात्त और जिनमें उदात्त और अनुदात्त दोनों का धर्म रहता है, वह स्वरित होता है।

अनुनासिक – जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं।

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा॰ एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

1.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i) स्वर, (अच्) वर्ण, (ii)उच्चारणार्थक, (iii) चौदह, (iv)अकार।

2. i) (ब) वर्गों के तृतीय वर्ण, ii) ब) 12, iii) (स) 'ऋ'
   (iv) (ब) वरदराज, v) (स) मुख और नासिका से।

3. (i) गलत, (ii) गलत, (iii) सही, (iv) सही, (v)सही।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।